❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ५ | गौराब्द ४७३, मास—वामन २७, वार—गर्भोदशायी
सोमवार, ३२ आषाढ़, सम्वत् २०१६, १७ जुलाई १९५९ | संख्या २

(श्रीकृष्ण)-प्रणाम-प्रणयाख्य-स्तवः

[श्रीमद्-रूप-गोस्वामी-विरचितः]

श्रीकृष्णाय नमः

कन्दर्पकोटि रम्याय स्फुरदिन्दीवर-त्विषे ।
जगन्मोहन-लीलाय नमो गोपेन्द्र-सूनवे ॥१॥

कृष्णजा-कृतहाराय कृष्ण-लावण्यशालिने ।
कृष्णा-कुल-करीन्द्राय कृष्णाय करवै नमः ॥२॥

सर्वानन्द-कदम्बाय कदम्ब-कुसुमस्रजे ।
नमः प्रेमावलम्बाय प्रलम्बारि-कनीयसे ॥३॥

कुण्डल स्फुरदंसाय वंशायत्त मुखश्रिये ।
राधा मानस-हंसाय व्रजोत्तंसाय ते नमः ॥४॥

नमः शिखंड-चूडाय दण्ड-मण्डित-पाणये ।
कुण्डलीकृत-पुष्पाय पुण्डरीकेक्षणाय ते ॥५॥

राधिका प्रेम-माध्वीक-माधुरी मुदितान्तरम् ।
कन्दर्पवृन्द-सौन्दर्यं गोविन्दमभिवादये ॥६॥
शृङ्गाररस शृंगारं कर्णिकारास्त-कर्णिकम् ।
वन्दे श्रिया नवाब्भ्राभां बिभ्राणां विभ्रमं हरिम् ॥७॥
साध्वीवत-मणिव्रात-पश्यतोहर-वेणवे ।
कह्लारकृत-चूडाय शंखचूड-भिदे नमः ॥८॥
राधिकाधर-बन्धूक-मकरन्द-मधुव्रतम् ।
दैत्य-सिन्धूर-पारीन्द्रं वन्दे गोपेन्द्रनन्दनम् ॥९॥
बर्हेन्द्रायुध-रम्याय जगज्जीवन-दायिने ।
राधा-विद्युद्वृतांगाय कृष्णाम्भोदाय ते नमः ॥१०॥
प्रेमान्ध-वल्लवीवृन्द-लोचनेन्दीवरेन्दवे ।
काश्मीर-तिलकाढ्याय नमः पीताम्बराय ते ॥११॥
गीर्वाणेश-मदोद्दाम-दाव-निर्वाण-नीरदम् ।
कन्दूकीकृत-शैलेन्द्रं वन्दे गोकुल-बान्धवम् ॥१२॥
दैन्यार्णवे निमग्नोऽस्मि मन्तुग्रावभरार्दितः ।
दुष्टं कारुण्य-पारीण मयि कृष्ण कृपां कुरु ॥१३॥
आधारोऽप्यपराधानाम्-विवेक-हतोऽप्यहम् ।
त्वत्कारुण्य-प्रतीक्षोऽस्मि प्रसीद मयि माधव ॥१४॥

अनुवाद—

जो करोड़ों कामदेवके समान अत्यन्त सुन्दर हैं, जिनकी अङ्गकान्ति खिले हुए नीलकमलके समान परम मनोहर है, जो परम चमत्कारमयी लीला प्रकट कर तीनों लोकोंको मोहित कर रहे हैं, उन गोपेन्द्र नन्दन श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ ॥१॥

जो गुंजाहारसे विभूषित हैं, इन्द्रनील-मणि (नीलम) की तरह जिनका सौन्दर्य है एवं जो कालिन्दीके तीर पर विचरण करनेवाले मत्त हस्तीके समान हैं, उन श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ ॥२॥

जो निखिल आनन्दके कारण-स्वरूप हैं, जिनका वक्षःस्थल कदम्बके फूलोंकी मालासे सुशोभित है, जो भक्तजनोंके प्रेम द्वारा वशीभूत हैं, उन रामानुज श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ ॥३॥

जिनका स्कन्ध-देश हिलते हुए कर्ण-कुण्डलोंसे सुशोभित है, वंशी बजानेके कारण किंचित वक्रीकृत मुखमण्डल द्वारा जो सुशोभित हैं, जो श्रीमती राधिकाके चित्तरूप मानस-सरोवरके हंस-स्वरूप हैं, व्रजवासियोंके शिरोभूषणरूप उन श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

जिनका चूड़ा मोर-पंखसे सुशोभित है, जो गौवों की रक्षाके लिये रत्नमय दण्ड धारण करते हैं, जिनके कर्ण-युगल पुष्पनिर्मित कुण्डलोंसे विभूषित हैं, उन कमलनयन श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

श्रीमती राधिकाके प्रेमरूप मधुर रस-माधुरीका पान कर जिनका अन्तःकरण सर्वदा हर्षयुक्त रहता है और करोड़ों कामदेव सा जिनका सौन्दर्य है, उन श्रीगोविन्दका मैं अभिवादन करता हूँ ॥६॥

जो शृङ्गार-रसके भूषण हैं, जो कनकचंपा (कनियार) के फूलोंसे निर्मित कर्णभूषण धारण किये हुए हैं, जो अपनी अङ्ग-कान्ति द्वारा नवीन मेघ

होनेकी भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं, उन श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ ॥७॥

जिनकी वंशी सती-साध्वी रमणियोंके धर्मनिष्ठा-रूप रत्नसमूहको चुरानेवाली है, जिनका चूड़ा कमलके पुष्पोंसे सुशोभित है एवं जो शंखचूड़ नामक कंसके अनुचरके निहन्ता हैं, उन श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ ॥८॥

जो श्रीमती राधिकाके अधररूप बन्धुक-पुष्पके मकरन्द पान करनेमें भ्रमर-स्वरूप हैं और जो दानव-रूप मत्त गजराजोंके लिये सिंह-स्वरूप हैं, उन गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी वन्दना करता हूँ ॥९॥

जो मयूर-पुच्छरूप इन्द्रधनु द्वारा अति मनोहर मूर्त्ति धारण किये हुए हैं, जो जगतके जीवन-दाता हैं और श्रीमती राधिकारूप विद्युत-मालासे जिनका श्रीअङ्ग सुशोभित है, उन श्रीकृष्णरूप नवीन मेघको णाम करता हूँ ॥१०॥

जो प्रेमान्ध व्रज-वनिताओंके नयनरूप नीलकमल के लिये चन्द्रके समान हैं, जो कुंकुमके द्वारा रचित तिलकसे सुशोभित हैं, उन पीताम्बर श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ ॥११॥

जो देवराज इन्द्रके प्रगाढ़ गर्वरूप दावानलको बुझानेके लिये नवीन मेघ हैं और जो गिरिराज गोवर्द्धनको गेंदके समान उठा लिये थे, उन गोकुल-बन्धु श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ ॥१२॥

हे करुणावरुणालय ! हे कृष्ण ! मैं अपराधरूप पाषाणसे दबकर दुःख समुद्रमें डूब रहा हूँ, अतएव कृपाकर इस मन्द व्यक्तिका उद्धार कीजिए ॥१३॥

हे माधव ! मैं सैकड़ों पापोंका आधार हूँ और अज्ञानके प्रभावसे हतचित्त होकर इस समय आपकी दयाकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, अतएव मेरे प्रति प्रसन्न होइये ॥१४॥

संत (सज्जन) के लक्षण

कृष्णैकशरण—१२

वैष्णवोंके जो २६ गुण बतलाये गये हैं, उनमें कृष्णैकशरणके अतिरिक्त २५ गुण तटस्थरूपमें अवस्थित रहते हैं और कृष्णैकशरण ही स्वरूप अर्थात् मुख्य गुण है। जिनमें कृष्णैकशरण-गुणका अभाव है, उनमें दूसरे २५ गुण संभव नहीं हैं। अथवा दूसरे २५ गुण लक्षित होने पर भी कृष्णैकशरण-गुणके अभावमें वे नित्यरूपमें अवस्थित नहीं रह सकते। परन्तु कृष्णैकशरण-रहनेसे दूसरे-दूसरे २५ गुण उसके पीछे-पीछे स्वयम् उदित हो पड़ते हैं।

शरण्य कौन हैं ?

सज्जन ही एकमात्र कृष्णैकशरण होते हैं। श्रीकृष्ण परमेश्वर-तत्त्वके मूल हैं; उनसे ही श्रीबलदेव प्रभु, वासुदेव, संकर्षण आदि चतुर्व्यूह, तीन पुरुषावतार और नैमित्तिक अवतार-समूह प्रकाशित हुए हैं। तीनों पुरुषावतारोंका तत्त्व जान लेने पर जीव मायिक संसारसे सम्पूर्णरूपसे छुटकारा पा लेता है एवं वैकुंठवस्तुकी मायासे अतीतता उपलब्धि कर नित्यदास्य ही उसका धर्म है—इसे समझ जाता है। सर्वाश्रय, सच्चिदानन्द-विग्रह, अनादि, सर्वादि, सर्वकारण-कारण वे कृष्णचन्द्र ही जीवके एकमात्र शरण्य हैं। उनसे विच्छिन्न होने पर जीवकी कोई दूसरी गति नहीं है।

कृष्णैकशरण कौन हैं ?

जो जीव कृष्णकी शरण छोड़कर मायावाद, कर्म-

काण्ड और छल-भक्तिमें अपना समय गँवाते हैं, वे कृष्णैकशरण नहीं हो सकते। केवल मात्र मुँहसे कृष्णैकशरण कहनेसे ही कृष्ण-विमुखता दूर नहीं होती। अकिंचन जीव ही कृष्णैक शरण हैं। अकिंचन कहनेसे मायावादीका अथवा कर्मकाण्डी संन्यासीका या प्राकृत दरिद्रताका बोध नहीं होता। जो ऐसा समझते हैं, वे भ्रममें हैं।

शरणागत और अकिंचनका एकमात्र लक्षण है—कृष्णसेवा-तात्पर्यमय होना। कृष्णैकशरणहोने पर जीव समस्त प्रकारकी मायिक प्रतिष्ठाके प्रति उदासीन हो जाता है। उस प्रतिष्ठाको वरण करना तो दूर रहे वह उसके डरसे उस स्थानको छोड़कर भाग जाता है। जिनमें वर्णाश्रम धर्म प्रबल है, वे अकिंचन या शरणागत नहीं हो सकते। समस्त प्रकारके धर्मोंका परित्याग कर केवल मात्र कृष्णके शरणागत होने पर ही कृष्णैकशरण कहा जा सकता है।

शरणागतिका लक्षण

शरणागतिके छः लक्षण होते हैं—

(१) अनुकूलताका संकल्प,

(२) प्रतिकूलताका वर्जन,

(३) कृष्ण ही मेरे एकमात्र रक्षक हैं—ऐसा दृढ़ विश्वास।

(४) कृष्णको अपने पालकके रूपमें वरण करना।

(५) कृष्णको आत्म-समर्पण कर उनकी सेवाके अतिरिक्त दूसरी-दूसरी चेष्टाओंसे रहित होना।

(६) समस्त प्रकारके जड़ीय अभिमानोंका परित्यागकर अपनेमें दीन-हीन बुद्धि।

इन छः लक्षणोंसे युक्त होकर सज्जन पुरुष कृष्णके निकट आत्म-समर्पण करते हैं।

छल-भक्त कपट, हिंसक, मत्सर और पर-निन्दक होते हैं

कृष्णैकशरण सज्जनवृन्द कृष्णके अतिरिक्त दूसरे किसीकी भी शरण नहीं लेते। वे दूसरोंकी निंदा नहीं करते, बेमतलब तीव्र प्रतिवाद नहीं करते, ईर्ष्या-द्वेष नहीं करते। ये दुर्गुण-समूह दुर्जनोंकी ही सम्पत्ति हैं।

भगवान और भक्तजनोंके प्रति द्वेष करना ही असाधु व्यक्तिका स्वाभाविक धर्म है, यह कृष्णैकशरणता नहीं, प्रत्युत् कृष्णविमुखता है। सौभाग्यवश छलभक्त यदि कृष्णैकशरण हो पड़ते हैं तब उस समय वे हरि-गुरु-वैष्णवोंके प्रति द्रोहाचरणका कुफल उपलब्धि करते हैं और अवैष्णव-प्रवृत्तियोंका शीघ्र ही त्याग कर देते हैं। हरि-विमुख जीवोंके लिये कृष्णैकशरणता अति दुर्लभ होने पर भी सत्संग द्वारा सुलभ हो सकती है। वे मत्सरता और कपटता छोड़कर सत्संगका सेवन करते-करते क्रमशः उन्नतिके पथ पर अग्रसर होते जाते हैं।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

जीवोंके प्रति दयाका रहस्य

'जीवोंके प्रति दया' वैष्णव-धर्मका एक प्रधान अङ्ग है। जीवोंके प्रति दया करना—वैष्णवजनका एक स्वभाव है। जिनमें यह स्वभाव देखा न जाय, वे सहस्र-सहस्र बाह्यचिह्नोंको धारण करने पर भी वैष्णव नहीं हो सकते। शचीनन्दन गौरहरिने समस्त धर्मोंका सार बतलाया है—जीवके प्रति दया, नाममें रुचि और वैष्णवोंकी सेवा। यह वैष्णव मात्रके लिये पालनीय है। जीवके प्रति वैष्णवकी दया वैष्णवके अन्तःकरणमें ही रहती है, उसका बाह्य परिचय क्या है, इसे भलीभाँति जान लेने पर उक्त उपदेशका तात्पर्य समझा जा सकता है। इस प्रबन्धका उद्देश्य इसी बाह्य परिचयका विवेचन प्रस्तुत करना है

दया—मूढ़ जीवोंके प्रति होती है

'जीवोंके प्रति दया'—यह उपदेश केवल बद्ध जीवोंके सम्बन्धमें ही लागू है। बद्ध जीवोंमें भी जो कृष्ण-सान्मुख्य प्राप्त कर चुके हैं, उनके प्रति दया नहीं, मैत्रीपूर्ण व्यवहार करनेका उपदेश है। अतएव बद्धजीवोंमें भी जो बालिश अर्थात् मूढ़ हैं, उनके प्रति ही दया करनी चाहिए। जीवोंका दुःख देख कर अन्तःकरणमें जो प्रवृत्ति उदित होकर जीवके अनुकूल आर्द्रता उत्पन्न करती है, उसका नाम 'दया' है।

दुःख और उसका मूल कारण

दुःख तीन प्रकारके हैं—आत्मनिष्ठ, लिङ्गदेहनिष्ठ और स्थूलदेहनिष्ठ। अविद्याके बन्धनसे जीव अपना स्वरूप भूल जाता है। इससे जीव अपना स्वरूप—नित्य कृष्णदास्य भूल जाता है। यही जीवोंका आत्मनिष्ठ दुःख है। यह आत्मनिष्ठ दुःख ही जीवोंका मूल दुःख है।

मायाद्वारा बँध कर जीव मायिक अहंकार बुद्धि, चित्त और मन, इनको 'मैं और मेरा' मान लिया है। यही उसका लिंग शरीर है। जड़ीय पदार्थोंमें 'मैं' और 'मेरा'-बुद्धिको मायिक अहङ्कार कहते हैं। जड़ीय पदार्थमें ज्ञान आदिकी चर्चा ही—मायिक बुद्धि है। जड़ीय ज्ञान संग्रह कर धारणा करनेका नाम मायिक चित्त है। जड़ीय धर्मका मनन और चिन्तन करनेका नाम मायिक मन है। यह जीवोंकी लिङ्गदेहनिष्ठ दुःखकी अवस्था है। इसी समय जड़ीय पाप और पुण्य उदय होते हैं। पाप और पुण्य जितना ही अधिक होता है, जीव उतना ही अधिक स्व-स्वरूपसे दूर होता जाता है तथा मायिक संसारमें फँसता जाता है।

मायिक जगतमें जीवोंके पांचभौतिक शरीरको स्थूल शरीर कहते हैं। स्थूल शरीरके अभाव, दुःख, दण्ड आदि जीवके स्थूल शरीरनिष्ठ दुःख हैं। पाप-आचरण भी दुःख ही है। पुण्य-आचरण आत्माके स्वस्वरूपसे अत्यन्त दूरवर्ती क्रिया होनेके कारण शुभ मानी जाने पर भी दुःख ही है।

जीवके ऊपर दया करना वैष्णवका स्वभाव है

कृष्णोन्मुख जीव पूर्वोक्त तीन प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पाकर कृष्णानुशीलन-सुख भोग करते हैं। उनको स्वयं जितनी ही अधिक असुविधा होती है, दूसरे दुःखी जीवोंके दुःखसे उनको उतना ही अधिक दुःख होता है। वे सोचते हैं—'ये जीव-समूह इतना क्लेश क्यों भोग रहे हैं? मैं इनके तीनों प्रकारके दुःखोंको दूर करनेका प्रयत्न करूँगा।' ऐसा सोच कर अपना कोई स्वार्थ न रहने पर भी वे सबके घर-घर उपस्थित होकर उनके हृदयमें कृष्णनामके प्रति रुचि उत्पन्न करानेकी चेष्टा करते हैं। यह वैष्णवमात्रका स्वभाव है।

> महन्त-स्वभाव एइ तारिते पामर।
> निज कार्य नाहिं तबु जान तार घर॥

वे घर घरमें जाकर भिक्षा माँगते हैं—

> (श्रद्धावान जन हे!)
> नदिया गोद्रुमे नित्यानन्द महाजन।
> पातियाछे नाम हट्ट जीवेर कारण॥
> प्रभुर आदेशे भाई माँगि एइ भिक्षा।
> बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा॥
> अपराध-शून्य हये लह कृष्णनाम।
> कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण धन-प्राण॥
> कृष्णेर संसार कर छाड़ि अनाचार।
> जीवे दया, कृष्णनाम—सर्व धर्म सार॥

(गीतावली)

गाँव-गाँवमें, घर-घरमें जाकर इस प्रकार शिक्षा देते-देते यदि एक वर्षमें एक भी जीवको मायाके जालसे उद्धार किया जाय और उसे कृष्ण-भजनमें प्रवृत्त किया जा सके, तो वैष्णवजन अपने इस कार्यसे बड़े आनन्दित होते हैं। बड़े सौभाग्यसे जीवमें कृष्णोन्मुखी वृत्तिका उदय होता है। इस दशामें जीवकी सहायता करना ही वैष्णवोंके हृदयगत जीवके प्रति दयाका एकमात्र परिचय है। वैष्णवका प्रधान कार्य है—जीवको कृष्णके उन्मुख करना। जहाँ स्थूल शरीरका रोग दूर करना अथवा जहाँ क्षुधा निवृत्ति

ही प्रधान उद्देश्य होता है, वहाँ वैष्णवताका अभाव समझना चाहिए। क्योंकि उससे क्षणिक अर्थात् सामयिक उपकार होता है—नित्य उपकार नहीं होता। परन्तु जहाँ उन कार्यों द्वारा कृष्णोन्मुखी वृत्तिकी सहायता होती है, वहाँ उन कार्योंमें भी वैष्णवोंकी स्वतः प्रवृत्ति होती है।

उत्तम या मध्यम वैष्णवजन ही सर्वोच्च दया करनेके अधिकारी हैं—दूसरे नहीं।

मध्यमाधिकारी या उत्तमाधिकारी वैष्णव होने पर, यह 'जीवके प्रति दया प्रवृत्ति' क्रमशः प्रबल होती है। कनिष्ठ-वैष्णवोंमें यह प्रवृत्ति पहले नहीं रहती। परन्तु उत्तम वैष्णवोंकी कृपासे जब उनका कनिष्ठत्व दूर होकर मध्यमाधिकार उदय होने लगता है, उसी समय वे वैष्णव-पदवाच्य होते हैं एवं 'जीवके प्रति दया' उनके हृदयमें उदित होती है। सर्वोच्च वैष्णवों के हृदयमें 'जीवके प्रति दया' अत्यन्त प्रबल होती है। वे भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि 'हे भगवन! संसार भरके समस्त जीवोंके पापोंको स्वयं ग्रहण कर उनके बदले मैं स्वयं नरकका भोग करूँगा। आप कृपाकर समस्त जीवोंको संसार रोगसे उद्धार कीजिए।

"जीवेर पाप लये मुई करि नरक भोग।
सकल जीवेर प्रभु घुचाओ भव रोग॥"

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीगौरांगदेव स्वयं भगवान हैं

[गतांक से आगे]

(३)

नवद्वीपके प्रख्यात निमाई पण्डित अपने प्रधान-प्रधान छात्रोंको साथ लेकर पूर्व बंगालमें पधारे हैं—यह खबर पूर्व-बंगालके गाँव-गाँवमें वायुमें गंधकी भाँति सर्वत्र फैल गयी। जहाँ जिस गाँवमें निमाई पण्डित पहुँच जाते, लोग उनके दर्शनोंके लिये टूट पड़ते। सरस्वतीके वर पुत्र दिग्विजयी पण्डित केशव काश्मिरीको बातकी बातमें पराजित करनेके कारण अध्यापक और छात्र-मण्डलीमें उनका नाम पहलेसे ही बड़े गौरवके साथ लिया जाता था। अब उनके साक्षात रूपमें वहाँ पधारनेसे छात्र-मण्डलियाँ दूर दूरसे इनके निकट विद्याध्ययनके लिये पहुँचने लगीं। निमाई पण्डित बड़े प्रेमसे उन्हें पढ़ाते और कुछ ही दिनोंमें उन्हें पूर्ण विद्वान् बनाकर तथा पदवी प्रदान कर लौटा देते। बड़े-बड़े विद्वानसे लेकर साधारण जनता तक बड़े प्रेमसे इनकी पारमार्थिक बातें सुनती।

जिन दिनों श्रीनिमाई पण्डित पूर्वी बंगालमें भ्रमण कर रहे थे, उन्हीं दिनों वहाँ एक गाँवमें एक सुकृति-सम्पन्न परम तेजस्वी ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था—तपन मिश्र। पण्डित होने पर भी सद्गुरु न मिलने के कारण—जीवका चरम साध्य और साधन क्या है—वे इस तत्वको भलीभाँति समझ नहीं पाये थे। इस विषयमें उनकी सदैव शंका बनी रहती थी। इष्टमंत्रका निरन्तर जप करने पर भी निर्दिष्ट साधनके अभावमें उनका चित्त बड़ा दुःखी रहा करता था। एक रात उन्होंने बड़ा ही सुन्दर स्वप्न देखा। एक सुन्दर देवमूर्त्ति उनके सामने प्रकट होकर कह रही है—'विप्रवर! खेद न करो। देखो, मैं तुम को वेदोंके भी परम गोपनीय एक बात बतला रहा हूँ। तुम निमाई पण्डितको साधारण पण्डित न समझना वे साधारण मनुष्य अथवा एक असाधारण पण्डित मात्र नहीं हैं। वे साक्षात नर-नारायण हैं, नरके रूपमें जगतके कल्याणके लिये लीला कर रहे हैं। तुम शीघ्र

ही उनके समीप गमन करो। वे तुम्हें यथार्थ साध्य-साधनका रहस्य बतलाकर तुम्हारी मनोव्यथा दूर करेंगे। यह बात भूल कर भी किसी दूसरेसे न कहना। यदि मेरी बात न मानकर ऐसा करोगे तो तुम्हें जन्म-जन्मान्तरों तक भीषण कष्ट भोगना पड़ेगा।'—ऐसा कह कर देवमूर्त्ति तत्क्षण अन्तर्द्धान हो गयी। इधर ब्राह्मण भी उठ बैठे और अपने सौभाग्यकी बारबार प्रसंशा करने लगे।

सबेरा होते ही तपन मिश्र निमाई पण्डितके चरण-प्रान्तमें उपस्थित हुए। श्रीगौर सुन्दर (निमाई पण्डित) उस समय अपने शिष्योंके साथ बैठे हुए थे। ब्राह्मणने आते ही इनके चरणोंको पकड़ लिये और फिर फूट-फूट कर रोना आरम्भ किया।

निमाई पण्डितने ब्राह्मणको सान्त्वना देते हुए अपने पैरोंसे अलग कर कहा—'आप क्यों रो रहे हैं? बतलाइये आपको क्या कष्ट है?'

ब्राह्मणने हाथ जोड़कर कहा—'मैं बड़ा ही दीन हीन और कंगाल हूँ। मेरा सारा जीवन व्यर्थ ही गया। जीवका साध्य और साधन क्या है—मैं अभी तक इसका कुछ भी मर्म नहीं समझ पाया हूँ। सांसारिक सुख मुझे काटने दौड़ते हैं। आप कृपा कर मुझे साध्य-साधन तत्वका उपदेश देकर संसार-सागरसे उबारिये।'

निमाई पण्डितने मुस्कराकर प्रेमपूर्वक कहा—'विप्रवर! आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं। जन्म-जन्मान्तरोंकी पुंज-पुंज सुकृति एकत्रित हुए बिना जीवकी हरि-भजनमें रुचि नहीं होती। जब आपमें हरि-भजनकी स्पृहा उत्पन्न हो गयी है, तब आपके उद्धारमें बाकी ही क्या रहा?

भगवान्‌को भूल कर जीव मायिक आवरण रूप स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंको प्राप्त होकर संसाररूपी मरुभूमिमें अनादि कालसे अमृतकी खोज करता हुआ जन्म-मरणके चक्करमें बुरी तरह फँस गये हैं। इन मायाबद्ध जीवोंके उद्धारके लिये भगवान् और उनके भक्तजन समय-समय पर संसारमें आविर्भूत होते हैं और भागवत-वाणीका प्रचार कर युग-धर्मकी स्थापना करते हैं। काल साधारणतः चार भागोंमें विभक्त है—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि। प्रत्येक युगका अपना एक विशेष साधन होता है। सत्ययुगमें विष्णुका ध्यान, त्रेतामें विष्णुके लिये यज्ञ, द्वापरमें विष्णुका अर्चन ही भगवत्प्राप्तिके साधन हैं; परन्तु कलिमें भगवन्नामका संकीर्त्तन ही युगधर्म है। दूसरे युगोंमें उन युगोंके लिये निर्द्धारित साधनोंके जो फल होते हैं, वह फल कलियुगमें हरिनाम संकीर्त्तनके द्वारा अत्यन्त सहज ही पाया जाता है।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥
(भा० ११।३।५२)

समस्त शास्त्रोंमें हरिनाम संकीर्त्तनको ही कलि-युगी जीवोंकी एकमात्र गति बतलाया गया है। यहाँ तक कि कलियुगमें हरिनाममें हरिनामको छोड़ कर निश्चय ही दूसरी गति नहीं है—इसकी तीन बार उक्ति कर शास्त्रकार श्रीवेदव्यासने इसकी सत्यता पर सपथकी मोहर तक लगा दी है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(बृहन्नारदीय पुराण)

महाभाग! वेद भी नामका सम्पूर्ण माहात्म्य वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। नाम और नामी भगवान अभिन्न तत्त्व हैं। भगवत्स्वरूपकी सम्पूर्ण शक्ति श्रीनाम भगवानमें निहित है। अधिक रूपमें नाम अधिक दयालु हैं। हरिनाम संकीर्तनमें कालाकाल, पात्रापात्र या शुचि-अशुचि आदिका विचार नहीं। खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, प्रत्येक अवस्था में मानवमात्र हरिनाम संकीर्त्तनका अधिकारी है, चाहे वह ब्राह्मण हो या शूद्र, गृहस्थ हो या संन्यासी, स्त्री हो या वर्णबहिर्भूत हो, बालक हो या वृद्ध हो अथवा सुखी या दुखी ही क्यों न हो। आप केवल मात्र हरिनाम संकीर्तन कीजिये। श्रद्धापूर्वक सत्संगमें नाम करने पर कुछ ही दिनों में साध्य और साधन—

जो भी तत्त्व हैं, अपने आप आपके निकट प्रकाशित हो जायेंगे। आप तनिक भी चिन्ता न करें।'

श्रीगौरसुन्दरकी बात सुनकर तपन मिश्रने हाथ जोड़ कर जिज्ञासा की—'भगवन्! कलियुगमें हरिनाम-संकीर्तन ही जीवोंकी एकमात्र गति है—इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं रह गया; परन्तु आप कृपा करके यह भी बतला दीजिये कि हरिनामसे किस नामको समझा जाय?'

श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने उत्तर दिया—'पुराण और तन्त्र आदि शास्त्रोंमें सोलह नाम बत्तीस अक्षरों से युक्त—'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ को कलियुगका महा-मंत्र बतलाया गया है। आप प्रेम-पूर्वक इस हरिनाम महामंत्रका निरन्तर संकीर्त्तन कीजिए। इससे आपकी मनोकामना पूर्ण हो जायगी, आप कृतार्थ हो जायेंगे। इसीसे साध्य-साधन—सब कुछ आपको अनायास ही प्राप्त हो जायगा। सम्पूर्ण वेद, सम्पूर्ण उपनिषद और सम्पूर्ण पुराणादि शास्त्रोंका यही चरम और सार उपदेश है।'

श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके मुखसे साध्य-साधनका इस प्रकार गूढ़ रहस्य सुन कर तपन मिश्रको बड़ा आनन्द हुआ। आनन्दके मारे उनकी आँखोंसे अश्रुधारा निकलने लगी। उन्होंने रोते-रोते कहा—'प्रभो! आज मैंने सब कुछ पा लिया; आज मेरा जन्म लेना सार्थक हो गया। परन्तु मेरी एक और एक ही प्रार्थना है—आप मुझ दीनको अपने चरण-कमलोंसे अलग न करें—मैं जीवन भर आपके चरणों के समीप रहना चाहता हूँ।'

महाप्रभुने तपनमिश्रकी पीठ पर बड़े प्यारसे हाथ फेरते हुए कहा—'आप अभी काशीमें जाकर निवास कीजिये। कुछ ही दिनोंमें मैं आपसे वहीं मिलूँगा। आप देर न करें, शीघ्र ही काशी के लिये प्रस्थान कीजिए।'

तपनमिश्रने जाते समय एकान्तमें श्रीमन्-महाप्रभुजीसे स्वप्नकी सारी बातें बतलायीं। महाप्रभु जीने स्वप्नको सत्य बतलाकर उसे गुप्त रखनेका परामर्श देकर उन्हें विदा किया और कुछ दिनोंके पश्चात् स्वयं भी शिष्य मण्डलीके साथ विपुल धन-सम्पत्ति लेकर श्रीनवद्वीप लौट आये।

उपनिषद्-वाणी

ईशोपनिषत्

'ईशोपनिषत्' शुक्ल-यजुर्वेदीय-संहिताके अन्तर्गत है। इसको पहला उपनिषत् कहा जाता है। इस पहले उपनिषद्के पहले मंत्रमें 'ईशावास्य' का उल्लेख रहने से इसको 'ईशावास्योपनिषत्' भी कहते हैं।

उपनिषद्के आरम्भमें शान्तिपाठका निम्नलिखित मंत्र दृष्टिगोचर होता है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् यह परब्रह्म पुरुषोत्तम सर्व प्रकारसे सर्वदा पूर्ण है। उससे पूर्णरूपमें अवतार-समूह प्रकटित होते हैं। पूर्ण वस्तुसे पूर्णवस्तु निकलने पर गणितके विचार से कुछ भी शेष नहीं रहता। परन्तु यह बात भगवान के सम्बन्धमें प्रयोज्य नहीं होती। क्योंकि भगवानकी शक्ति अविचिन्त्य है। अतएव वहाँ पूर्णवस्तुसे पूर्ण वस्तु निकलने पर पूर्ण ही शेष बच रहता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही मूलतत्त्व हैं। ये अंशी-तत्त्व भी

कहलाते हैं। ये अंशीतत्त्व श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा अपने धाममें पूर्णरूपमें ही विराजमान रहते हैं। इनसे ही विभिन्न अवतार-समूह प्रकाशित हुआ करते हैं। अवतारोंको अंश या कला कहा गया है। परन्तु स्वरूपतः अंशी और अंशमें किसी प्रकारका भेद नहीं है—शान्तिपाठके मंत्रका यही तात्पर्य है।

अखिल विश्व-ब्रह्माण्डमें हमारी इन्द्रियोंसे जो कुछ भी देखा-सुना या अनुभव किया जा रहा है, वह सब कुछ सर्वनियन्ता, सर्वाधार, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान और सर्वकल्याणगुण-स्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है। जगतकी सारी वस्तुएँ उनकी ही सेवाके उपकरण हैं, मनुष्यके भोग्य नहीं हैं। अतएव यदि मनुष्य इनमें भोगबुद्धि करता है तो वह परधनमें लोभ करनेके समान अपराधी होता है। इसलिये समस्त वस्तुओंको भगवानकी सेवामें लगा कर उनकी कृपासे प्रसादके रूपमें जो कुछ पाया जाय उसीसे सन्तुष्ट रहना चाहिए तथा शास्त्रनियत कर्मोंका कर्त्तव्य मानकर आचरण करते हुए ईश्वरका आनुगत्य करना अवश्य ही कर्त्तव्य है। शास्त्रोक्त कर्मके आचरण द्वारा जीवन निर्वाहसे ही परमेश्वर सन्तुष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी मार्गसे—स्वेच्छाचार द्वारा संसार-बन्धन खुलता नहीं, अधिकन्तु अधिकतर दृढ़ होता जाता है।

इस प्रकार भगवानकी सेवामें आत्मनियोग कर एक सौ वर्ष तक अर्थात् पूरी आयु तक जीवन धारण करनेसे कर्म-बन्धनमें फँसना नहीं पड़ता। इसके विपरीत जो स्वच्छाचारी होते हैं—दूसरे मार्गों पर चलते हैं, वे आत्मघाती हैं तथा मरनेके बाद आसुरी योनियोंमें भटकते हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसे लोगों को आत्मघाती बतलाया गया है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥
(श्रीमद्भा० ११।२०।१७)

यह मनुष्य शरीर समस्त शुभफलोंकी प्राप्तिका मूल है। यह अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी इस समय अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। गुरुदेव इसके कर्णधार हैं। भगवत्कृपा रूप अनुकूल वायु इस शरीर रूप नौकाको आगे बढ़ा कर संसार-सागरसे पार कर देती है। इतनी सुविधा होने पर भी जो लोग इस शरीरके द्वारा संसार-सागरसे पार होनेकी चेष्टा नहीं करते, वे आत्मघाती हैं, अर्थात् अपने हाथों अपने आत्माकी हत्या करने वाले हैं।

वे सर्वशक्तिमान परमेश्वर एक और अचल हैं, तथापि मनसे भी अधिक तीव्र वेगयुक्त हैं। परस्पर विरुद्ध धर्मोंका समावेश केवल परमेश्वरमें ही संभव है; क्योंकि वे अचिन्त्य शक्तिमान हैं। मन और इन्द्रियाँ तो उनके पास पहुँच भी नहीं पातीं। यहाँ तक कि देवता और महर्षिगण भी उनको पूर्णरूपसे जान नहीं पाते। वायु आदि देवताओंमें जो शक्ति है, उसे परमेश्वर द्वारा दी हुई शक्ति समझना चाहिए। भगवान्‌की शक्तिके बिना दूसरे देवताओंमें कुछ भी करनेकी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। अगले उपनिषद में इस विषयको विस्तारपूर्वक बतलाया जायगा। वे परमेश्वर नित्य अचल रहते हुए भी दूसरे-दूसरे देवताओंको अपनी शक्ति प्रदान कर उनके द्वारा जल-वर्षण, प्रकाशन आदि कार्य करवाते हैं।

वे परमेश्वर चलते भी हैं और नहीं भी चलते। वे दूरसे दूर हैं तथा समीपसे भी समीप हैं। वे सबके अन्दर और बाहर सर्वत्र विराजमान हैं। ऐसे परस्पर विरोधी धर्म एकमात्र परमेश्वरमें ही एक ही कालमें अवस्थित रहते हैं, यह उनकी अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव है। वे अपने नित्यधाममें नित्य लीला करते हैं, यही उनका चलना है तथा वे समस्त प्राणियोंके शरीरमें अन्तर्यामी रूपसे सदा-सर्वदा स्थित हैं, यही उनका न चलना है। सदा-सर्वथा जीवोंकी हृदय-गुहामें विराजमान रहनेके कारण वे अत्यन्त समीप हैं, परन्तु अभक्त पुरुष इसे अनुभव नहीं

कर पाते, इसलिये वे दूरसे दूर हैं। वे कालके रूप में सब जगह बाहर विराजमान है और सबके अन्तर्यामी होनेके कारण भीतर भी अवस्थित हैं, इस प्रकार वे भीतर-बाहर सर्वत्र परिपूर्ण हैं।

जिस समय जीव सब जगह सब समय परमात्मा का दर्शन करनेमें समर्थ हो जाता है, तब उसके घृणा की कोई वस्तु नहीं रह जाती। सम्पूर्ण वस्तुओंमें अपने इष्टदेवकी स्फूर्ति होने पर भला, कोई किसी वस्तुके प्रति घृणाका भाव रख ही कैसे सकता है? वह सर्वत्र-सर्वदा अपने इष्टदेवका दर्शन कर प्रणत हो पड़ता है। समस्त प्राणियोंमें परतत्त्वका दर्शन करने पर आनन्दमग्न हो जाता है। उस समय सांसारिक सुख-दुख शोक-मोह आदि उसके हृदयको स्पर्श नहीं कर पाते।

परमेश्वर परम तेजोमय हैं। वे शुभाशुभ कर्म जनित प्राकृत स्थूल और सूक्ष्म शरीरसे रहित परन्तु छिद्ररहित अप्राकृत चिन्मय-शरीरयुक्त हैं। इसलिये उनमें देह और देहीका भेद नहीं। वे अप्राकृत, सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। वे सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्व-नियन्ता एवं सर्वाधिपति हैं; वे कर्मके परतंत्र नहीं हैं, वरं सर्वतंत्र-स्वतंत्र हैं; वे कर्मके अनुसार सबको यथायोग्य फल भोग कराते हैं।

जो मनुष्य भोगोंमें आसक्त होकर उनको प्राप्त करनेके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं अर्थात् विविध प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे अज्ञानान्धकारसे आच्छन्न होकर नाना प्रकारकी अशुभ योनियोंमें गमन करते हैं। और जो मनुष्य अविद्याके वशीभूत होकर भी अपनेको ज्ञानी मान कर भोगोंका त्याग करते हैं, अथच भगवान्‌की सेवा भी नहीं करते, वे और भी अधिक नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं। शास्त्रनियत कर्त्तव्य कर्मोंका आचरण करना जीवमात्रका कर्त्तव्य है। भगवद्भक्तजन भगवत्सेवाके अनुकूल समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, परन्तु कर्मत्यागी मुमुक्षुगण (मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले) सेवा अथवा कर्म दोनोंका वास्तविक रहस्य न समझ कर उनका त्याग कर अविद्याके वश होकर भ्रान्त हो पड़ते हैं। परन्तु जो विद्या और अविद्याका वास्तविक स्वरूप जान लेते हैं, वे शास्त्र-नियत कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा आत्म-शुद्धि लाभकर पराविद्याके सहारे परमेश्वरको साक्षात् कर अमृतके अधिकारी हो पड़ते हैं।

मायाकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ हैं—विद्या और अविद्या। विद्यावृत्ति जड़का विनाश करती है, और अविद्या वृत्ति जड़को उत्पन्न करती है। जड़ाच्छन्न मनुष्य अविद्या वृत्तिमें अवस्थित हैं। इसलिये उनकी चेतन प्रकृति जड़के अन्धकारसे ढकी रहती है। जो लोग जड़से उदासीन तो रहते हैं; परन्तु भक्तिको छोड़-कर ज्ञान, योग आदि मार्गोंका अवलम्बन करते हैं, वे स्वरूप शक्तिका आश्रय प्राप्त नहीं कर पाते। इस-लिये वे आत्म-विनाशरूप अधिकतर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं। मायिक जगतमें परमात्माका सम्बन्ध स्थापन न करनेसे जीव किसी प्रकार भी जड़से छुट-कारा नहीं पा सकता। जड़में जो 'विशेष' धर्म है, उसका उपादेयत्व परित्याग करनेसे 'निर्विशेष' रूप एक अनर्थ उपस्थित होता है, जो जीवके अन्तःकरण-को दूषित कर देता है। इस प्रकार जीव बड़ी दुर्दशा को प्राप्त होता है। (श्रीभक्ति विनोद ठाकुर)

जो मनुष्य जड़ा प्रकृतिकी उपासना करते हैं, वे अज्ञान-अन्धकारमें प्रवेश करते हैं और जो निर्वि-शेषका अनुसंधान करते हैं, वे उससे भी घोर अन्ध-कारमें प्रवेश करते हैं। परन्तु जो लोग इन दोनोंका ही परित्याग कर चित् प्रकृतिकी उपासना करते हैं, वे मृत्युको पार कर अमृतके अधिकारी हो जाते हैं।

उन परमेश्वरका रूप ज्योतिर्मय पात्रमें ढका हुआ है अर्थात् वे ज्योतिर्मय हैं। परमेश्वरकी कृपाके बिना ज्योतिके भीतर विराजमान उनके श्यामसुन्दर रूपका दर्शन नहीं मिलता। इसलिये भक्तजन ऐसी प्रार्थना करते हैं—हे चित् सूर्य! आप कृपा कर इस आच्छा-दनको हटा कर अपने अतुलनीय मनोहर रूपका दर्शन कराइये। कहाँ चित् सूर्य स्वरूप आप, और कहाँ आपके किरण-कण-स्थानीय अतिशय क्षुद्र मैं; मैं अतिशय क्षुद्र होनेके कारण आपके अंगोंसे छिटकती हुई—आँखोंको

झुलसा देनेवाली तीव्र ज्योतिमयी यवनिका मुझे आपका रूपदर्शन नहीं करने देती। इसलिये मैं वास्तविक धर्मसे च्युत होकर मायाके अन्धकारमें पड़ा हुआ भटक रहा हूँ। आप कृपाकर इस आवरणको हटा लीजिए, जिससे मैं आपको देख सकूँ। हे भगवन्! आप भक्तजनोंका पोषण करनेवाले हैं, आप परम ज्ञानस्वरूप हैं, आप सबका नियंत्रण और शासन करनेवाले हैं, आप अगम्य होने पर भी सूरिजनों—प्रेमीभक्तोंके द्वारा गम्य हैं और आप प्रजापतिके भी प्रिय हैं। आप अपनी उग्र किरणोंको हटा लीजिए और मुझे अपने परम कल्याणकारी परम प्रेमास्पद रूपका दर्शन कराइये। आप पूर्ण पुरुष हैं। मैं आपका चिद्कण होनेके कारण आपसे अभिन्न भी हूँ। मेरे जड़ शरीरकी वायु आपके परव्योमकी चिद्वायुरूप अमृतत्वको प्राप्त हो। मेरे स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर जलकर भस्म हो जाँय। हे मन! तुम अपने कर्त्तव्योंका स्मरण करो। हे अग्निदेवता! मैं भगद्धाममें जाना चाहता हूँ। आप कृपा कर मुझे परम मङ्गलमय परमार्थ पथसे भगवानके समीप पहुँचा दीजिये। आप मेरी अविद्या-रूपी कुटिलताका नाश कर दीजिये। मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ।

जीव अपने पापोंका स्मरण करने पर उससे मुक्त होनेके लिये छटपटाता है; उस समय वह परमेश्वरको अग्नि नामसे सम्बोधन करता है। अग्निमें दाहिका शक्ति परमेश्वरसे सिद्ध है।

यह श्रुति भगवत्-स्तुतियुक्त है। कहा जाता है कि स्वयंभुव मनु एक बार राक्षसोंके आक्रमणसे पीड़ित होने पर अपने दौहित्र (लड़कीके लड़के)—'यज्ञ' नामक अवतारका स्तव किया था। यज्ञावतारने उनके स्तवसे सन्तुष्ट होकर राक्षसोंके अत्याचारसे उनकी रक्षा की थी। श्रीमद्भागवतमें मनुकृत 'यज्ञ' की स्तुति देखी जाती है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

जैव-धर्म

[गतांकसे आगे]

अनन्य भक्तिके उदित होनेपर समस्त प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं। जो लोग बार-बार पाप कार्य करते हैं, उनको अनन्यभक्ति नहीं हुई है—ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि भक्ति-क्रियाके साथ-साथ बारम्बार जान-बूझकर पाप करना नामापराध है, जो भक्ति-वृत्तिको जड़से उखाड़कर फेंक देता है। भक्तजन इस अपराधसे बहुत दूर रहते हैं।

रति स्वभावतः निरन्तर उत्तरोत्तर अभिलाषमयी होनेके कारण अशान्त स्वभाव युक्त उष्ण और प्रबल आनन्दमयी होती है तथा संचारी भावरूप उष्णता उगल कर भी करोड़ों चन्द्रसे भी अधिक सुशीतल और अमृतमय स्वादयुक्त होती है।'

ब्रजनाथ और विजयकुमार भाव-तत्त्वकी व्याख्या सुनकर बड़े चकित हुए और भावमें मग्न होकर चुपचाप बैठे रहे। कुछ देरके बाद बोले—'प्रभो! आपने हमारे दग्ध हृदयमें उपदेशामृतकी प्रबल रूपमें वर्षाकर प्रेमकी बाढ़ ला दी है। अब हम क्या करें! कहाँ जाँय! कुछ भी समझमें नहीं आता है। ब्राह्मण-कुलमें जन्म होनेका प्रचुर अभिमान है, दीनताका हृदयमें सर्वथा अभाव है। ऐसी दशामें हमारे लिये भावकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात है। तब केवल एकमात्र यही भरोसा है कि आप बड़े प्रेममय और दयालु हैं, एक बूँद प्रेम प्रदान करनेसे हम कृत-कृत्य हो जायेंगे। आपके साथ हमलोगोंका जो पारमार्थिक

सम्बन्ध स्थापित हुआ है—यही हमारी आशाका एकमात्र स्थल है । हम अतिशय दीन-हीन और अकिंचन है, और आप भगवत्पार्षद और परम कृपालु हैं। कृपा कर हमें एक विषयमें यह उपदेश प्रदान करें कि हमारा उस विषयमें क्या करना कर्त्तव्य है । मेरी तो ऐसी इच्छा हो रही है कि मैं इसी क्षण घर-बार छोड़ कर आपके चरण-कमलोंका दास होकर यहीं पड़ा रहूँ ।'

विजयकुमार उचित अवसर देख कर बोले—'प्रभो ! ब्रजनाथ अभी बालक हैं, इनकी माता इनको गृहस्थ बनाना चाहती हैं । परन्तु ये ऐसा नहीं चाहते। कृपा कर इस विषयमें इनको क्या करना चाहिए—आज्ञा दीजिये ।'

बाबाजी—'तुम लोग कृष्णके कृपापात्र हो । अपने संसारको कृष्णका संसार बनाकर कृष्णकी सेवा करो। हमारे महाप्रभुने जगतको जो शिक्षा दी है, जगत् उसी शिक्षा पर अमल करे । जगत्में दो प्रकारसे रह कर भगवद्भजन किया जा सकता है—गृहस्थ रहकर अथवा गृह-त्याग कर । जबतक गृह-त्यागका अधिकार न हो, तबतक मनुष्यको गृहस्थ रह कर ही कृष्ण-सेवा करनी चाहिए ।

महाप्रभुने अपनी प्रकट लीलाके पहले चौबीस वर्षोंमें जो लीलाकी है—वह गृहस्थ वैष्णवोंके लिये आदर्श है और अंतिम चौबीस वर्षोंतककी लीला-गृहत्यागी वैष्णवोंका आदर्श है। गृहस्थ वैष्णव महाप्रभुजीके गृहस्थ जीवनको लक्ष्यकर अपना आचरण निर्णय करेंगे । मेरी समझसे तुमलोग भी वही करो। ऐसा न समझना कि गृहस्थाश्रममें कृष्ण-प्रेमकी पराकाष्ठा प्राप्त नहीं की जा सकती है—महाप्रभुके अधिकांश कृपापात्र तो गृहस्थ ही थे, जिनकी चरण-धूलिके लिये गृहत्यागी वैष्णव भी प्रार्थना करते हैं ।

रात अधिक हो गयी । विजय और ब्रजनाथ दूसरे-दूसरे वैष्णवजनोंके साथ हरिगुण गान करते-करते श्रीवास-अङ्गनमें सारी रात बितायी । प्रातःकाल शौचादि क्रियाओंसे निबट कर गंगा-स्नान करनेके पश्चात् गुरुदेव और वैष्णवोंको दण्डवत्-प्रणाम किये । पुनः संकीर्तनके बाद महाप्रसाद सेवा कर तृतीय पहर घर लौटे । विजयकुमारने अपनी बहिनको बुलाकर कहा—'तुम ब्रजनाथके विवाहकी तैयारी करो । ये विवाह करेंगे । मैं कुछ दिनोंके लिये मोदद्रुम जा रहा हूँ । विवाहकी तिथि तय होने पर खबर देना। मैं सपरिवार आकर विवाहका शुभकार्य सम्पन्न करूँगा । मैं कल ही हरिनाथ (उनका छोटा भाई) को यहाँ भेज दूँगा । वह यहाँ रह कर सारी व्यवस्था करेगा ।

ब्रजनाथकी माँ और दादीको तो मानो पृथ्वी का राज्य मिल गया । वे बड़ी आनन्दित हुईं । उन्होंने विजयकुमारको नये वस्त्र आदि देकर बिदा किया ।

बाईसवाँ अध्याय समाप्त

तेइसवाँ अध्याय

प्रमेयके अन्तर्गत नाम-तत्त्वका विचार

बिल्वपुष्करिणी एक बहुत ही रमणीक ग्राम है । इसके उत्तर और पश्चिम दो दिशाओंमें भगवती भागीरथी प्रवाहित होती हैं । गाँवके एक कोनेमें बेलके वृक्षोंसे घिरा हुआ एक बड़ा ही रम्य सरोवर है, जिसके तीरपर "बिल्वपक्ष" महादेवका मंदिर है। इस मंदिरसे थोड़ी ही दूर पर 'भवतारण' विराजमान हैं । बिल्वपुष्करिणी और ब्राह्मण-पुष्करिणीके बीचमें 'सिमुलिया' नामक गाँव है । ये सभी गाँव श्रीनवद्वीप नगरके अन्तर्गत हैं । बिल्वपुष्करिणी गाँवके बीचोबीचसे एक बड़ा रास्ता चला गया है । इसी

बड़े रास्तेके ऊपर ही उत्तरकी ओर ब्रजनाथका घर है। विजयकुमार अपनी बहिनके यहाँसे विदा होकर कुछ दूर चले आने पर रास्तेमें सोचने लगे कि श्रीनाम-तत्त्वको श्रीबाबाजीके निकट जान करके ही घर लौटना ठीक रहेगा। ऐसा सोचकर वे बिल्वपुष्करिणी लौट आये और बहिनसे बोले—'मैं यहाँ और भी दो-एक दिन ठहर कर घर जाऊँगा।'

मामाके लौट आनेसे ब्रजनाथको बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों चण्डी-मंडपमें बैठ कर दशमूल शिक्षाके सम्बन्धमें बातचीत करने लगे। अबतक सूर्यदेव अस्ताचलको जानेकी तैयारी कर चुके थे। पक्षीसमूह अपने-अपने घोंसलेकी ओर मुख किये तीव्र गतिसे उड़ रहे थे। पशुओंके दल जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए अपने-अपने घरोंको लौट रहे थे। इसी समय श्रीरामानुज-सम्प्रदायके दो वैष्णव संत वहाँ पहुँचे और ब्रजनाथके घरके सामने ही एक कटहलके वृक्षके नीचे अपना आसन जमाये। इधर-उधरसे कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी कर उन्होंने धूनी भी जला दी। उनके ललाट पर श्रीसम्प्रदायका तिलक सुशोभित हो रहा था। मुख-मण्डल पर अद्भुत शान्ति विराज रही थी।

ब्रजनाथकी माता अतिथियोंका बड़ा सत्कार करती थी। अतिथियोंको भूखा जानकर उन्होंने घरसे नाना-प्रकारकी भोज्य-सामग्रियाँ लेकर दोनोंके सामने उपस्थित कर उनसे रसोई बनाकर भोजन करनेके लिये अनुरोध किया। वे सन्तुष्ट होकर रोटी बनाने लगे। ब्रजनाथ और विजयकुमार दोनों वैष्णवोंके शान्त-प्रशान्त मुख-मण्डल देखकर उनके निकट चले आये। ब्रजनाथ और विजयकुमारके गले में तुलसी माला और शरीरमें द्वादश तिलक देख कर दोनों वैष्णव-संत बड़े प्रसन्न हुए और अपने कम्बलको और भी चौड़ा बिछा कर उसके ऊपर उनको बड़े सम्मानसे बैठाये।

उनका परिचय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ब्रजनाथने पूछा—'महाराज! आपलोग कहाँसे आ रहे हैं?'

दोनोंमेंसे एक बाबाजीने उत्तर दिया—'हमलोग अयोध्याजीसे आ रहे हैं। हमारी बहुत दिनोंसे इच्छा हो रही थी कि श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीला-भूमि श्रीनवद्वीप धामका दर्शन करें। आज हमारा परम सौभाग्य है कि हम भगवानकी कृपासे श्रीनवद्वीप धाममें पहुँच गये हैं। हम यहाँ पर कुछ दिन रह कर श्रीमन्महाप्रभुके लीला-स्थलोंका दर्शन करना चाहते हैं।'

ब्रजनाथने कहा—'आपलोग श्रीनवद्वीपमें ही पहुँच गये हैं; आज आप लोग यहीं विश्राम कर श्रीमन्महाप्रभुजीका जन्मस्थान और श्रीवास-अङ्गन का दर्शन करें।'

ब्रजनाथकी बात सुनकर वे दोनों वैष्णव बड़े आनन्दित हुए और गीताका यह श्लोक (१५।६) पाठ करने लगे—

'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।' (क)

आज हमारा जीवन धन्य हुआ—सप्त-पुरियोंमें प्रधान श्रीमायातीर्थका दर्शन कर हम धन्य हुए।'

तत्पश्चात् अर्थ-पंचक (ख) के सम्बन्धमें विचार हुआ। दोनों रामानुजीय वैष्णवोंने अर्थपंचकके स्व-स्वरूप, पर-स्वरूप, उपाय-स्वरूप, पुरुषार्थ-स्वरूप और विरोधी-स्वरूप—इन पाँच विषयोंके विचार प्रस्तुत किये। विजय कुमार उन विचारोंको सुन कर 'तत्त्व-त्रय' के ऊपर नाना-प्रकारसे विचार करने लगे।

कुछ देर तक विचार होने पर विजयकुमार बोले—'आपके सम्प्रदायमें श्रीनाम-तत्त्वके सम्बन्धमें क्या सिद्धान्त है?'

परन्तु इस प्रश्नके उत्तरमें उन दोनों वैष्णवोंने जो कुछ बतलाया, उसे सुनकर ब्रजनाथ और विजयकुमारको तनिक भी सुख न हुआ।

(क) मेरे उस परम धाममें जानेपर वहाँसे फिर लौटना नहीं होता।

(ख) अर्थ-पंचक—श्रीरामानुज सम्प्रदायका एक छोटा परन्तु बड़ा ही उपादेय ग्रन्थ है। इसमें पाँच विषयोंका सुन्दर विवेचन किया गया है।

ब्रजनाथने कहा—'मामाजी ! मैंने बहुत ही विचार कर देखा है कि कृष्णनाम ग्रहण करनेके अतिरिक्त जीवके कल्याणका कोई दूसरा उपाय नहीं है। हमारे प्राणेश्वर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी शुद्ध कृष्ण नामका जगत्में प्रचार करनेके लिये ही इस माया-तीर्थमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीगुरुदेवने गत कल हमें जो उपदेश प्रदान किये थे, उनमें उन्होंने कहा था कि—समस्त प्रकारकी भक्तिके अङ्गोंमें श्रीनाम ही प्रधान है। उन्होंने यह भी कहा था कि नाम-तत्त्वको पृथकरूपमें समझ लेना। अतएव चलिए आज ही नाम-तत्त्वको भलीभाँति समझ लें।'

संध्या हो गयी है। कुछ अँधेरा भी छा गया है। श्रीवास-अँगनमें भगवान्की संध्या आरति हो चुकी है। वैष्णवजन बकुल-चबुतरे पर बैठे हैं। वृद्ध रघुनाथदास बाबाजी महाराज भी वहीं उनके बीचमें बैठकर तुलसी माला पर संख्यापूर्वक नाम कर रहे हैं। इसी समय ब्रजनाथ और विजयकुमारने उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

बाबाजी महोदयने उनका आलिङ्गन करते हुए कहा—'तुम लोगोंका भजन सुख बढ़ रहा है तो ?'

विजयकुमारने हाथ जोड़ कर कहा—'प्रभो ! आपकी कृपासे हमारा सब प्रकारसे कल्याण है। कृपा कर आज हमें नाम-तत्त्वका उपदेश प्रदान कीजिए।'

बाबाजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'भगवन्नाम दो प्रकारके हैं,—मुख्य नाम और गौण नाम। मायिक गुण अवलम्बन पूर्वक जगत् सृष्टि सम्बन्धी जो सब नाम प्रचलित हैं, वे सभी गौण अर्थात् गुण-सम्बन्धी हैं। सृष्टिकर्त्ता, जगत्पाता, विश्व नियन्ता, विश्वपालक, परमात्मा, आदि बहुत से नाम गौण नाम हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्म आदि नाम भी गौण नामके ही अन्तर्गत हैं। इन गौण नामोंका फल अत्यन्त अधिक होने पर भी इनके द्वारा चित्फल सहसा उदय नहीं होता। मायिक काल और देशसे चिज्जगतमें जो नाम नित्य वर्त्तमान हैं, वे नाम-समूह—चिन्मय और मुख्य हैं। नारायण, वासुदेव, जनार्दन, हृषिकेश, हरि, अच्युत, गोविन्द गोपाल, राम आदि मुख्य नाम हैं। ये नाम भगवद्धाममें भगवत्स्वरूपके साथ एक होकर वर्तमान हैं। जड़ जगत्में महासौभाग्यशाली पुरुषोंकी जिह्वापर ये नाम भक्ति द्वारा आकृष्ट होकर नृत्य करते हैं। नामके साथ मायिक जगत्का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। नाममें स्वभावतः भगवत् स्वरूपकी सारी शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। इसलिये नाम भी सर्व-शक्तिसम्पन्न हैं। वे मायिक जगत्में अवतीर्ण होकर मायाको ध्वंस करनेमें प्रवृत्त होते हैं। इस मायिक संसारमें हरिनामके अतिरिक्त जीवोंका कोई दूसरा बन्धु नहीं है। बृहन्नारदीय पुराणमें हरिनामको ही एकमात्र गति बतलाया गया है—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ (क)
(बृ. पु. ३८।१२६)

नामकी अनन्त शक्तियाँ हैं। पातकोंका ध्वंस करनेमें हरिनामकी बड़ी अद्भुत शक्ति है। हरिनाम क्षण भरमें समस्त प्रकारके पातकोंको जला डालते हैं।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्व पातकैः।
पुमानः विमुच्यते सद्यः सिंह त्रस्तैर्मृगो यथा॥ (ख)
(गरुड़ पुराण १।२३२।१२)

(क) सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ, द्वापरमें अर्चनकी प्रधानता होती है। परन्तु कलियुगमें हरिनाम ही मेरा जीवन है, हरिनाम ही मेरा जीवन है, हरिनाम ही मेरा जीवन है कलियुगमें नामके सिवा जीवकी कोई दूसरी गति नहीं दूसरी गति नहीं दूसरी गति नहीं। तीन बार उक्ति द्वारा कलियुगमें दूसरे साधनोंकी निरर्थकता दिखलायी गयी है।

(ख) जो व्यक्ति अनजानमें भी श्रीनारायणका नाम कीर्त्तन करता है, वह तत्क्षण समस्त प्रकारके पापोंसे छुटकारा पा लेता है। हरिनाम कीर्त्तन करनेसे पापी व्यक्ति पापके हाथोंसे छुटकारा पा लेता है, ठीक उसी प्रकारसे जैसे मृग एक भयानक सिंहके हाथसे छुटकारा पा ले।

नामाश्रित व्यक्तिके सारे दुःख श्रीनाम द्वारा दूर हो जाते हैं। नामसे सर्व-प्रकारके रोग भी दूर हो जाते हैं—

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नाम-कीर्त्तनात् ।
तदैव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम् ॥ (क)
(स्कन्द पुराण)

हरिनाम करनेवाला अपने कुल, समाज और पृथ्वीको पवित्र करता है—

महापातक युक्तोऽपि कीर्त्तयन्निशं हरिम् ।
शुद्धान्तःकरणे भूत्वा जायते पंक्ति-पावनः ॥ (ख)
(ब्रह्माण्ड पुराण)

नाम परायण व्यक्तिके सारे दुःख, सारे उपद्रव, समस्त प्रकारके रोग आदि शान्त हो जाते हैं—

सर्वं रोगोपशमं सर्वोपद्रव नाशनम् ।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥ (ग)
(बृहद्विष्णुपुराण)

नामोच्चारणकारीको कलिके दोष स्पर्श नहीं करते—

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय ।
इतीरयन्ति येनित्यं न हि तान् बाधते कालः ॥ (घ)
(बृहन्नारदीय पुराण)

नाम श्रवण करनेके साथही नारकीका उद्धार हो जाता है—

यथा यथा हरेर्नाम कीर्त्तयन्ति स्म नारकाः ।
तथा तथा हरौ भक्तिमुद्वहन्तो दिवं ययुः ॥ (ङ)
(नृसिंह तापिनी)

हरि-नामोच्चारणसे प्रारब्ध कर्म विनष्ट हो जाते हैं—

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्त-कर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ (च)
(श्रीमद्भा० १२।३।४४)

हरिनाम कीर्तनकी महिमा वेद पाठसे बढ़कर है—

मा ऋचो मा यजुस्तात मा साम पठ किञ्चन ।
गोविन्देति हरेर्नाम गेयं गायस्व नित्यशः ॥ (छ)
(स्कन्दपुराण)

(क) जिनका 'नाम' स्मरण और कीर्त्तनसे समस्त प्रकारकी आधिव्याधियाँ सम्पूर्णरूपसे दूर हो जाती हैं, मैं उन अनन्तदेवको नमस्कार करता हूँ।

(ख) यदि महापापी भी निरन्तर हरिनाम करे, तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह पंक्ति-पावन बन जाता है अर्थात् वह द्विजत्व प्राप्त कर पृथ्वीको पवित्र कर देता है।

(ग) श्रीहरिनामका कीर्त्तन करनेसे सर्वप्रकारके रोग दूर हो जाते हैं, सब तरहके उपद्रव शान्त हो जाते हैं, सर्व प्रकारके विघ्न विनष्ट हो जाते हैं और पराशान्ति प्राप्त हो जाती है।

(घ) जो लोग नित्यकाल 'हे हरे ! हे गोविन्द ! हे केशव ! हे वासुदेव ! हे जगन्मय—ऐसा कह कर कीर्त्तन करते हैं, उनको कलि तनिक भी कष्ट नहीं दे सकता है।

(ङ) अतिशय नारकी व्यक्ति भी जहाँ जहाँ श्रीहरिका नाम कीर्त्तन करते हैं, वे उन-उन स्थानोंमें ही हरिके प्रति भक्ति प्राप्त कर दिव्य धाममें गमन कर गये हैं।

(च) मनुष्य मरनेके समय आतुरताकी स्थितिमें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्के किसी एक नामका उच्चारण कर ले, तो उसके सारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तमसे उत्तम गति प्राप्त होती है। परन्तु हाय रे कलियुग ! कलियुगसे प्रभावित होकर लोग उन भगवानकी आराधनासे भी विमुख हो जाते हैं।

(छ) ऋक्, साम और यजुः आदि वेदोंके पठन-पाठनकी कोई आवश्यकता नहीं; केवल श्रीहरिका 'गोविन्द' नाम ही कीर्त्तन करने योग्य है; तुम निरन्तर यही करना।

हरिनाम सभी तीर्थोंसे बढ़ कर है—

तीर्थ-कोटी सहस्राणि तीर्थ-कोटी-शतानि च ।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानि कीर्त्तनात् ॥ (क)
(वामनपुराण)

हरिनामका आभास भी समस्त प्रकारके सत्कर्मों से अनन्त गुण अधिक फलदायक है—

गो-कोटी-दानं ग्रहणे खगस्य
प्रयाग-गङ्गोदक-कल्पवासः ।
यज्ञायुतं मेरु-सुवर्ण-दानं
गोविन्द कीर्तेन समं शतांशैः ॥ (ख)

हरिनाम समस्त प्रकारके अर्थोंको प्रदान कर सकते हैं—

एतद् षड्वर्ग-हरणं रिपु-निग्रहणं परम् ।
अध्यात्म-मूलमेतद्धि विष्णोर्नामानुकीर्त्तनम् ॥ (ग)
(स्कन्द पुराण)

हरिनाम सर्वशक्तिसम्पन्न हैं—

दान-व्रत-तपस्तीर्थ-क्षेत्रादीनाञ्च याः स्थिताः ।
शक्तयो देव महतां सर्व-पापहराः शुभाः ॥
राजसूयाश्वमेधानां ज्ञान-साध्यात्म-वस्तुनः ।
आकृष्य हरिणा सर्वाः स्थापिता स्वेषु नामसु ॥ (घ)
(स्कन्द पुराण)

हरिनाम सम्पूर्ण जगतको आनन्ददा कर है—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या,
जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥ (ङ)
(गीता ११।३६)

नामोच्चारणकारीको नाम जगत्पूज्य बना देते हैं—

नारायण जगन्नाथ वासुदेव जनार्दन ।
इतीरयन्ति ये नित्यं ते वै सर्वत्र वन्दिताः ॥ (च)
(बृहन्नारदीय)

नाम ही अगतियोंके एकमात्र गति हैं—

अनन्य-गतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तपाः ।
ज्ञान-वैराग्य रहिता ब्रह्मचर्यादि-वर्जिताः ॥
सर्वे धर्मोज्झिताः विष्णोर्नाम-मात्रैक-जल्पकाः ।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ॥ (छ)
(पद्मपुराण)

(क) एक सौ करोड़ या एक हजार करोड़ तीर्थोंमें भ्रमण करनेका जो फल होता है, वह सब कुछ केवल श्रीविष्णुके नामोंके कीर्त्तनके द्वारा ही पाया जाता है ।

(ख) सूर्य-ग्रहण या चन्द्र-ग्रहणके दिन गोदान, प्रयाग या गंगातट पर एक कल्पतकका वास, हजारों यज्ञ और सुमेरु पर्वतके समान ऊँचे सोनेके पर्वतका दान—यह सब कुछ 'श्रीगोविन्द'—नामके कीर्त्तनके सौवें भागके बराबर भी नहीं हो सकता ।

(ग) श्रीविष्णुका नाम संकीर्त्तन जन्म-मृत्यु- आदि षड्वर्गका विनाशक, काम-क्रोध आदि षड् रिपुओंको दमन करनेवाला और अध्यात्म ज्ञानका मूल है ।

(घ) दानमें, व्रतमें, तपमें, तीर्थ-क्षेत्रोंमें, प्रधान-प्रधान देवताओंमें, समस्त प्रकारके पापोंको हरण करने-वाले सत्कर्मोंमें, शक्ति-समूहमें, राजसूय और अश्वमेध यज्ञादिमें तथा ज्ञान-साध्य आत्म वस्तुमें—जहाँ भी जो कुछ है, श्रीहरिने उसे वहाँसे आकर्षण कर अपने नाममें स्थापन कर दिया है ।

(ङ) हे हृषिकेश ! आपके यश-कीर्त्तनको सुन कर जगत् अत्यन्त हर्षित और अनुरागको प्राप्त हो रहा है ।

(च) जो लोग निरन्तर 'हे नारायण ! हे जगन्नाथ ! हे वासुदेव ! हे जनार्दन ! इस प्रकार कीर्त्तन करते हैं, वे सर्वत्र पूजित होते हैं ।

(छ) जिनकी कोई दूसरी गति नहीं है, जो भोगी हैं, दूसरोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, ज्ञान और वैराग्यसे रहित हैं, ब्रह्मचर्य-वर्जित हैं और जो समस्त धर्मोंसे बाहर हैं, वे केवल मात्र विष्णुका नाम कीर्त्तन कर जो गति प्राप्त करते हैं, उस गतिको सारे धार्मिकजन एकत्र मिल कर भी प्राप्त नहीं कर सकते ।

हरिनाम सदा-सर्वदा और सभी अवस्थाओंमें किया जा सकता है—

न देश-नियमस्तस्मिन् न काल-नियमस्तथा ।
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक॥ (क)
(विष्णुधर्मोत्तर)

हरिनाम मुक्ति चाहनेवालोंको अनायास ही मुक्ति प्रदान करते हैं—

नारायणाच्युतानन्त-वासुदेवेति यो नरः ।
सततं कीर्त्तयेद्भुवि याति मल्लयतां स हि ॥ (ख)
(वराह पुराण)

किं करिष्यति सांख्येन किं योगैर्नरनायक ।
मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्द-कीर्त्तनम् ॥ (ग)
(गरुड़ पुराण)

हरिनाम जीवको वैकुण्ठलोककी प्राप्ति करवा देते हैं—

सर्वत्र सर्व-कालेषु येऽपि कुर्वन्ति पातकम् ।
नाम-संकीर्त्तनं कृत्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ (घ)
(नन्दी पुराण)

हरिनाम भगवान्‌को प्रसन्न करानेके लिये सर्वोत्तम है—

नाम-संकीर्त्तनं विष्णोः क्षुत्-तृट्-प्रपीडितादिषु ।
करोति सततं विप्रास्तस्य प्रीतो ह्यधोक्षजः ॥ (च)
(बृहन्नारदीय पुराण)

हरिनाम भगवानको वश करनेमें समर्थ है—

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ।
यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥ (छ)
(महाभारत)

हरिनाम जीवके परम पुरुषार्थ हैं—

इदमेव हि माङ्गल्यमेतदेव धनार्जनम् ।
जीवितस्य फलञ्चैतद्-यद्दामोदर-कीर्त्तनम् ॥ (ज)
(स्कन्द और पद्मपुराण)

हरिनाम कीर्त्तन सब प्रकारके भक्ति-साधनोंमें श्रेष्ठ है—

अघच्छित्-स्मरणं विष्णोर्बह्वायासेन साध्यते ।
ओष्ठ-स्पन्दन-मात्रेण कीर्त्तनं तु ततो वरम् ॥ (झ)
(वैष्णव-चिन्तामणि)

(क) हे नाम-लोभिन् । भगवन्नाम कीर्त्तनमें देश और कालका कोई नियम नहीं है तथा उच्छिष्ट-मुखसे अथवा किसी भी अशुचि अवस्थामें इसका निषेध नहीं है अर्थात् कोई भी व्यक्ति पवित्र और अपवित्र समस्त अवस्थाओंमें हरिनाम कीर्त्तन कर सकता है ।

(ख) जो मनुष्य 'नारायण', 'अच्युत', वासुदेव—इन नामोंका निरन्तर कीर्त्तन करता हुआ पृथ्वीपर विचरण करता है, वह मेरे साथ एक लोकमें—गमन करता है ।

(ग) हे राजेन्द्र । यदि आप मुक्त होना चाहते हैं, तो आप श्रीगोविन्दका नाम कीर्त्तन कीजिए । हे नरश्रेष्ठ ! सांख्य या योगसे कुछ भी नहीं होनेका, ये क्या कर सकते हैं ?

(घ) जो सर्वत्र और सर्वदा पाप कार्य करते हैं वे भी नाम-संकीर्त्तन कर विष्णुका परम पद प्राप्त कर लेते हैं ।

(च) हे विप्रगण ! भूख और प्याससे अत्यन्त पीड़ित होने पर भी जो निरन्तर विष्णुका नाम संकीर्त्तन करते हैं, उनके प्रति अधोक्षज विष्णु अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं ।

(छ) बहुत ही दूर रहनेके कारण द्रौपदीने मुझे जोर से 'हे गोविन्द' कहकर पुकारा था । उसकी कातर पुकार सुनकर बहुत बड़ा ऋण हो गया, जो आज भी मेरे हृदयसे उतर नहीं रहा है ।

(ज) भगवानके 'दामोदर'-नामका कीर्त्तन ही कल्याणका एकमात्र हेतु है; धन-संग्रह जीवनका एकमात्र फल है ।

(झ) विष्णुके स्मरणसे बड़े परिश्रमसे पाप विनष्ट होते हैं; (परन्तु उनके नाम-कीर्तन द्वारा वे पाप अति सहज ही नष्ट हो जाते हैं ।) भगवन्नाम ओष्ठ-स्पन्दन मात्रसे ही कीर्त्तन हो पड़ता है, जो स्मरणसे अतिशय श्रेष्ठ है ।

यद्ध्यायतो हरिं भक्त्या कृते क्रतुशतैरपि ।
फलं प्राप्नोत्यविकलं कलौ गोविन्द-कीर्त्तनम् ॥ (क)

(विष्णु रहस्य)

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि-कीर्त्तनात् ॥ (ख)

(भा० १२।३।५२)

विजयकुमार ! अब विचार करके देखो, हरिनामका आभास भी समस्त सत्कर्मोंसे श्रेष्ठ है। क्योंकि सत्कर्म मात्र ही उपाय-स्वरूप होकर काम्यफलको प्रदान करके दूर हो जाता है। विशेषतः सत्कर्म जैसा भी क्यों न हो, जड़मय होता है। परन्तु हरिनाम चिन्मय हैं। अतएव उपाय-स्वरूप होकर भी फलके स्थानमें वे स्वयं ही उपेय-स्वरूप हैं। और भी देखो, भक्तिके जो सब अङ्ग बतलाये गये हैं, वे सभी हरिनामको आश्रय कर वर्तमान हैं।

विजय—प्रभो ! हरिनाम पूर्ण चिन्मय हैं—यह मुझे अच्छी तरहसे विश्वास हो रहा है। फिर भी नाम तत्त्वके सम्बन्धमें शंकारहित होनेके लिये यह समझ लेना आवश्यक है कि अक्षरात्मक नाम चिन्मय कैसे हो सकते हैं ? अतः आप कृपया इस विषयको स्पष्ट करें।'

बाबाजी—पद्मपुराणमें नामका स्वरूप बतलाया गया है—

नाम-चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रस-विग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्य मुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः ॥ (ग)

नाम और नामी परस्पर अभेद तत्त्व हैं। इसलिये नामी कृष्णके समस्त चिन्मय गुण उनके नाममें हैं, नाम सर्वदा पूर्ण-तत्त्व हैं; हरिनाममें जड़-संस्पर्श नहीं है, वे नित्यमुक्त हैं, क्योंकि वे मायिक गुणों द्वारा कभी आबद्ध नहीं होते। नाम—स्वयं कृष्ण हैं, अतएव चैतन्य-रसके घन विग्रह हैं। नाम—चिन्तामणि हैं, उनसे जो कुछ भी माँगा जाय, वे सब कुछ देनेमें समर्थ हैं।'

विजय—'नामाक्षर किस प्रकार मायिक शब्दसे परे हो सकता है ?'

बाबाजी—'जड़ जगतमें हरिनामका जन्म नहीं हुआ है। चित्कण-स्वरूप जीव शुद्ध स्वरूपमें अवस्थित होकर अपने चिन्मय शरीरसे हरिनाम उच्चारण करनेका अधिकारी है। परन्तु मायाबद्ध होने पर जड़-इन्द्रियोंके द्वारा वह शुद्धनाम नहीं कर पाता। ह्लादिनी-शक्ति की कृपा होने पर जिस समय स्व-स्वरूपकी क्रिया आरम्भ हो जाती है, उसी समय उनका नामोदय होता है। नामोदय होते ही शुद्धनाम मनोवृत्ति के ऊपर कृपापूर्वक अवतीर्ण होकर भक्तके भक्तिद्वारा पवित्र हुई रसनाके ऊपर नृत्य करते हैं। नाम अक्षराकृति नहीं हैं, केवल जड़ जिह्वाके ऊपर नृत्य करनेके समय वे वर्णके आकारमें प्रकाशित होते हैं—यही नामका रहस्य है।'

विजय—'मुख्य नामोंमें कौन सा नाम अतिशय मधुर है ?'

(क) सत्ययुगमें श्रद्धापूर्वक सैकड़ों यज्ञ आदिके द्वारा जो फल लाभ होता है, कलिकालमें श्रीगोविन्दके नाम कीर्त्तन द्वारा वे समस्त फल उसी प्रकार पाये जा सकते हैं।

(ख) सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनका अर्चन करनेसे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है।

(ग) नाम और नामीमें कोई भेद न होनेके कारण नाम ही चिन्तामणि-स्वरूप है, अर्थात् परम पुरुषार्थको देनेवाले हैं। ये 'नाम' कृष्णचैतन्य रस-स्वरूप, पूर्ण शुद्ध अर्थात् अपरिच्छिन्न एवं माया-सम्बन्धसे रहित नित्यमुक्त हैं।

बाबाजी—'शतनामस्तोत्रमें कहते हैं—

विष्णोरेकैकं नामापि सर्व-वेदाधिकं मतम् ।
तादृक्-नाम-सहस्रेण राम-नाम-समं स्मृतम् ॥ (क)

पुनः ब्रह्माण्ड पुराणमें भी कहते हैं—

सहस्र-नाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत् फलम् ।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति ॥ (ख)

'कृष्णनाम ही सर्वोत्तम नाम है । इसलिये हमारे प्राणनाथ श्रीगौरांगसुन्दरने जिस 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' इत्यादि नामकी शिक्षा दी है, उसी नामको निरन्तर लेते रहो ।'

विजय—'हरिनाम साधनकी पद्धति क्या है ?'

बाबाजी—'तुलसीकी माला या उसके अभावमें हाथ पर संख्या ठीक रख कर अपराधोंसे दूर रह कर निरन्तर हरिनाम करना चाहिए । शुद्धनाम होनेसे नामके फल—प्रेमकी प्राप्ति होती है । संख्या रखनेका तात्पर्य यह है कि 'साधक यह समझ सके कि उसका नाम-अनुशीलन बढ़ रहा है या घट रहा है । तुलसी हरिको अत्यन्त प्रिय हैं । अतः उनके स्पर्शसे नामका अधिक फल अनुभव किया जाता है । 'नाम' करनेके समय कृष्णके 'स्वरूप' और 'नाम' में अभेद बुद्धि रखकर नाम करना चाहिए ।'

विजय—'प्रभो ! साधन-अङ्ग नौ या ६४ प्रकार के होते हैं, फिर नामरूपी केवल एक अङ्ग ही निरन्तर होनेसे दूसरे-दूसरे साधनोंके लिये समय कैसे निकाला जाय ?'

बाबाजी—'यह कोई कठिन बात नहीं । ६४ प्रकारके भक्ति-अङ्ग नवधा भक्तिके अन्तर्गत हैं श्रीमूर्त्तिका अर्चन हो अथवा निर्जनमें *नामका साधन हो, भक्तिके नौ प्रकारके अङ्गोंका सभी जगह अनुशीलन किया जा सकता है । श्रीमूर्त्तिके सामने कृष्णनामका शुद्ध रूपमें श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण आदि होनेसे ही नाम साधन करना हो गया । जहाँ श्रीमूर्त्ति नहीं हैं, वहाँ श्रीमूर्त्तिका स्मरण करे और उस श्रीमूर्त्तिमें उनका नाम-श्रवण-कीर्त्तनादि रूप नवधाभक्ति के समस्त अङ्गोंका साधन करे । जिनकी किसी सौभाग्यसे नाम-कीर्त्तनमें विशेष रुचि होती है, वे निरन्तर 'नाम' कीर्त्तन करेंगे । इसीसे उनका सस्मत अङ्गोंका पालन करना हो जाता है । श्रवण-कीर्त्तन आदि साधनोंमें श्रीनाम कीर्त्तन सबसे प्रबल है । कीर्त्तनानन्दके समय दूसरे साधनांगोंका परिचय व्यक्त न होने पर भी वही यथेष्ट है ।'

विजय—'निरन्तर' नाम कैसे हो ?'

बाबाजी—'निद्रा कालके अतिरिक्त बैठते-उठते खाते-पीते या कोई काम करते-करते—सब समय नाम-कीर्तन करनेका नाम निरन्तर नाम-कीर्तन है । नाम-साधनमें देश, काल, अवस्था या शुचि-अशुचि सम्बन्धी कोई निषेध नहीं है ।'

विजय—'अहा ! नाम-भगवान्‌की कृपा असीम है । परन्तु जबतक आप हमें कृपा कर निरन्तर नाम करने की शक्ति नहीं प्रदान करते, तबतक वैष्णव-पदवी प्राप्त होनेकी कोई आशा नहीं है ।'

(क) विष्णुका एक-एक नाम समस्त वेदोंके पाठसे भी अधिक फलदायक होता है । परन्तु ऐसे ऐसे सहस्र नाम एकत्र मिलकर एक 'राम नामके बराबर होते हैं ।

(ख) विष्णुके पवित्र सहस्रनामोंका तीन बार उच्चारणका जो फल होता है, कृष्णनाम एक बार उच्चारणसे वही फल दिया करते हैं । तात्पर्य यहकि एक रामनाम हजार विष्णुनामके बराबर है और तीन हजार विष्णुनाम अर्थात् तीन रामनाम एक कृष्णनामके बराबर है । तीन बार रामनाम का फल वही होता है जो एकबार कृष्णनाम करनेसे होता है ।

*निर्जन = साधुसंग—जैवधर्म पृ० ३३४, पंक्ति १५।१६ ।

बाबाजी—'मैंने पहले ही बतलाया है कि वैष्णव तीन प्रकारके होते हैं—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने सत्यराजखाँको बतलाया था कि जो एक बार कृष्णनाम करते हैं, वे वैष्णव हैं; जो निरन्तर कृष्णनाम करते हैं, वे मध्यम वैष्णव हैं और जिनको देखनेसे ही दूसरोंके मुखमें कृष्ण नाम आवे, वे उत्तम वैष्णव हैं। अतएव जब तुम लोग कभी-कभी श्रद्धाके साथ कृष्णनाम करते हो, तब तुमलोग वैष्णव-पदवी प्राप्त कर चुके हो।'

विजय—'शुद्ध कृष्णनामके सम्बन्धमें और भी जो कुछ जानने योग्य बातें हैं उन्हें कृपाकर बतलाईये।'

बाबाजी—'पूर्ण श्रद्धासे उदित हुई अनन्य भक्ति द्वारा जिस कृष्णनामका उदय होता है, उसे ही कृष्ण नाम कहते हैं। इसके अतिरिक्त जो कुछ नाम जैसा लक्षित होता है, वह या तो नामाभास है अथवा नामापराध।'

विजय—'प्रभो! हरिनामको साध्य कहना चाहिए अथवा साधन?'

बाबाजी—'जब नाम साधन भक्तिके साथ लिया जाय, तब उस नामको 'साधन' कह सकते हो। फिर जब 'भाव' और 'प्रेमभक्ति' के साथ लिया जाय, तो नाम को ही 'साध्यवस्तु' समझो। साधक की भक्तिकी अवस्था भेदसे नामके संकोच और विकासकी भिन्न-भिन्न प्रतीतियाँ होती हैं।'

विजय—'कृष्णनाम और कृष्ण-स्वरूपका कोई परिचय-भेद है या नहीं?'

बाबाजी—'नहीं, कोई परिचय भेद नहीं है। केवल एक रहस्य यह है, वह यह कि 'स्वरूप' से भी 'नाम' अधिक कृपा करते हैं। स्वरूपके प्रति जो अपराध होता है, उसे स्वरूप कभी क्षमा नहीं करते; परन्तु कृष्णनाम स्वरूपके प्रति हुए अपराध तथा अपने प्रति हुए अपराध दोनोंको क्षमा करते हैं। तुम लोग नामापराधको भलीभाँति जानकर उसका यत्नपूर्वक वर्जन कर नाम करना; क्योंकि निरपराध हुए बिना शुद्धनाम नहीं होता। अगले दिन नामापराध समझ लेना।

ब्रजनाथ और विजयकुमार नाम-माहात्म्य और नामका स्वरूप-तत्त्व जानकर श्रीगुरुदेवकी चरण-धूलि लेकर धीरे-धीरे बिल्वपुष्करिणी रवाना हुए।

❀ तेइसवाँ अध्याय समाप्त ❀

श्रीयुत राधागोविन्द नाथ महोदयके

'वैष्णव दर्शन' के प्रतिवादमें विराट सभा

गोवर्द्धनदास बाबाजी, वृन्दावनके निकट यह जानकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है कि श्रीयुत राधा-गोविन्द नाथ महोदय द्वारा लिखित 'वैष्णव-दर्शन नामक पुस्तकका तीव्र प्रतिवाद करनेके लिये तारीख २२-४-४६ को वृन्दावन में श्रीश्रीअमियनिमाई गौरांग-मंदिरके सामने एक विराट सभा हुई है। इस सभामें राधाकुण्ड, वृन्दावन, गोवर्द्धन, मथुरा आदि स्थानोंके साधारण वैष्णव-समाजके प्रधान-प्रधान गोस्वामी और बाबाजी महोदय उपस्थित थे। उक्त सभामें श्रीयुत राधागोविन्दनाथ महोदयकी उक्त पुस्तककी तीव्र समालोचना हुई है और सर्वसम्मति से उक्त पुस्तकको सिद्धान्त-विरुद्ध घोषित किया गया है। हम उक्त समालोचनाके दो-एक विषयों

को पाठकोंकी जानकारीके लिये नीचे निवेदन कर रहे हैं—

पहली बात यह है कि श्रीयुत नाथ महोदयने गौड़ीय-वैष्णवोंको किसी साम्प्रदायिक वैष्णव-सम्प्रदायके अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया है। विशेषतः गौड़ीय-वैष्णव श्रीमन्महाप्रभुजीके समयसे ही माध्व गौड़ीय अथवा ब्रह्ममाध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके अन्तर्गत स्वीकृत होते चले आ रहे हैं—इसे उन्होंने अस्वीकार किया है। यह उनकी दार्शनिक ऐतिह्य-ज्ञान हीनता का ही परिचायक है। उक्त सभाके सभापति महोदय ने सर्वसम्मतिसे नाथ महाशयके विचारोंकी निंदा करते हुए घोषणा की कि श्रीगौड़ीय वैष्णव श्रीमध्वाचार्य-सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। उन्होंने इस बातको दृढ़तासे स्पष्ट किया कि इस निर्विवाद सत्यके विरुद्ध जो भी पुस्तक प्रकाशित क्यों न हो, वह वैष्णवोंके पढ़ने योग्य नहीं है।

दूसरी बात यह कि गौड़ीय वैष्णवोंके परम पूज्य और गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायके रक्षक श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु माध्व-गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके एक प्रतिभाशाली और अद्वितीय दार्शनिक पण्डित तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके विशुद्ध सेवकाचार्य हैं, इसमें किसीको संदेह नहीं होना चाहिए। नाथ महोदयने श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुको गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का साम्प्रदायिक आचार्य अस्वीकार किया है। इस लिये वे उक्त आचार्यके चरणकमलोंके प्रति अपराधी हैं।

तीसरी बात, नाथ महोदयने अचिन्त्यभेदाभेदवादके सम्बन्धमें जो सब विचार दिखलाये हैं, वे शास्त्र-विरुद्ध और सर्वथा अयुक्ति-संगत हैं। अतएव उनके द्वारा रचित और संगृहीत 'गौड़ीय-दर्शन' नामक पुस्तकको पढ़ने अथवा सुननेसे शुद्ध-वैष्णवका सर्वनाश होना अनिवार्य है। वे चिरकाल के लिये गौड़ीय वैष्णव समाजसे विदाई ग्रहण करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

उक्त सभामें पूर्व-पूर्व महाजनोंके चरण चिन्होंका अनुसरण कर गौड़ीय-वैष्णव-समाजको ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सम्प्रदाय स्वीकार किया गया है और नाथ महोदय द्वारा लिखित 'वैष्णव-दर्शन' को गौड़ीय-वैष्णवोंके लिये सर्वथा अयोग्य बतलाया गया है।*

---

* श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्ध गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय माध्व-सम्प्रदायके अन्तर्गत है, इसे हमने श्रीयुत सुन्दरानन्द विद्याविनोद महोदय द्वारा रचित 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'—ग्रन्थके प्रतिवाद-स्वरूप 'अचिन्त्यभेदाभेद' शीर्षक प्रबन्धमें विस्तारित रूपसे प्रमाणित किया है तथा उसमें हमने नाथ महोदयके 'वैष्णव-दर्शन'—ग्रन्थका भी प्रतिवाद किया है। पाठकवर्ग विगत दो वर्षकी श्रीगौड़ीय-पत्रिकासे उक्त 'अचिन्त्यभेदाभेद' प्रबन्ध पढ़ कर इस विषयमें विस्तारपूर्वक जान सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रबन्धके बहुल प्रचारके फल-स्वरूप ही इस प्रकार बड़ी सभामें श्रीयुत राधागोविन्द नाथ महाशयका तीव्र प्रतिवाद किया गया है तथा उनके अपसिद्धान्तपूर्ण विचारोंके लिये उन्हें इस प्रकार खुले आम चुनौती दी गयी है। आशा है, भारतमें सर्वत्र ही सभी धर्म प्रतिष्ठानोंसे ऐसे ही प्रतिवाद किये जायेंगे।

—श्रीगौड़ीय पत्रिका (बंगला मासिक) से अनुदित।

श्रीश्रीकेदार-बद्रीकी परिक्रमाका आह्वान

(श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः)

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ
चौमाथा, पो०-चुँचुड़ा (हुगली)
६-६-१९५६

सादर संभाषणपूर्वक निवेदन,

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने इस वर्ष भी श्रीकेदार-बद्री-परिक्रमाका विराट आयोजन किया है। रास्तेमें हरिद्वार, हृषिकेश, श्रीनगर, तुङ्गनाथ आदि ६४ तीर्थस्थानोंके दर्शन होंगे। आगामी १४ अगस्त, १९५६, २८ श्रावण, शुक्रवारको हावड़ा स्टेशनके नं० ६ प्लेट फार्मसे रातके ८॥ बजे यात्रा की जायगी। धर्म-प्राण सज्जनवृन्द निम्नलिखित नियमानुसार इसमें योगदान करेंगे।

निवेदक—
समितिके सभ्यवृन्द

नियमावली—

(१) दोनों समय प्रसाद (भोजन), हावड़ासे हरिद्वार तक जाने-आनेका रेल और मोटर, बसका किराया तथा केदार-बद्रीके पहाड़ी रास्तेमें कुली आदिके खर्चके लिये प्रत्येक यात्रीको ३००) भिक्षाके रूपमें देना होगा।

(२) प्रत्येक यात्री अधिक शीतोपयोगी गरम कपड़े, बिस्तरा, एलमुनियमका एक लोटा और एक थाल अपने साथ लावेंगे। पहाड़ी मार्गमें प्यास रोकनेके लिये ताल मिश्री और लॉजेन्स साथ रखेंगे। बिस्तरा और बर्तन आदि कुल मिला कर सारा समान ५ सेरसे अधिक नहीं होना चाहिये।

(३) यदि कोई यात्री ५ सेरसे अधिक सामान ले जाना चाहेगा, तो उसे प्रतिसेर ३) अलगसे कुली-भाड़ा देना होगा।

(४) कुल ३००) में से १००) अगले १७ श्रावण, ३ अगस्त १९५६ के पहले उपरोक्त पते पर श्रीश्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशवगोस्वामी महाराजके निकट जमा करना होगा।

(५) बाकी २००) २८ श्रावण, १४ अगस्त १९५६ को हावड़ा स्टेशनके नं० प्लेटफार्म पर १ बजेसे ५ बजे शाम तक परिक्रमाके व्यवस्थापकके निकट जमा करना होगा।

(६) पैदल परिक्रमामें असमर्थ व्यक्तियोंको घोड़ा, डांडी, कांडी आदिका किराया अलग देना होगा।

(७) स्त्री-पुरुष प्रत्येक यात्रीको जूता (चमड़ेका नहीं) छाता तथा बिस्तरेको ढकनेके लिये रबर-क्लौथ लाना होगा।

(८) परिक्रमामें लगभग ३०-३५ दिन लगेंगे।

दर्शनीय स्थान

हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मण-झूला, व्यासघाट, देव प्रयाग, कीर्त्तिनगर, श्रीनगर, रुद्र प्रयाग, अगस्तमुनि गुप्तकाशी, उखीमठ, रामपुर, त्रियुगी नारायण, सोन-प्रयाग, मन्दाकिनी, मुण्डकाटा गणेश, केदारनाथ, तुङ्गनाथ, आकाश गङ्गा, गोपेश्वर, वैतरणी कुण्ड, पीपलकोठी, गरुड़ गङ्गा, पाताल गङ्गा, योशीमठ, पंचशीला, विष्णु प्रयाग, पाण्डुकेश्वर, हनुमानचट्टी, श्रीश्रीबद्रीनारायण, तप्तकुण्ड, वसुधारा, चमौली, नन्दप्रयाग, आदिबद्री आदि।

प्रचार-प्रसंग

आसाम-प्रदेशमें श्रीश्रीआचार्यदेव—

आसाम प्रदेशीय गौड़ीय-वैष्णवजनोंके विशेष आह्वान पर परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आसाम प्रदेशीय शुद्धभक्ति-प्रचारकेन्द्र श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठमें पधारे और वहाँ २३ मई से ६ जून तक गोलोकगञ्ज, धुबड़ी और अमेयापुर आदि स्थानों में शुद्ध भक्तिका विपुल प्रचार कर १० जूनको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुचुड़ामें पधारे हैं।

श्रीश्रीपिछलदा गौड़ीय मठकी स्थापना एवं श्रीश्रीविग्रह प्रतिष्ठा

पिछलदा यों तो पिछले कई वर्षोंसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मेदिनीपुरमें एक विशेष प्रचार केन्द्र रहा है और समितिके संस्थापक और नियामक श्रील आचार्यदेव द्वारा स्थापित वहाँके श्रीचैतन्य-पादपीठकी नियमित रूपमें आजतक सेवापूजा चलती आ रही थी; परन्तु भक्तजनोंके अतिशय आग्रहसे गत ५ आषाढ़को श्रीश्रीआचार्यदेवने वहाँ पर श्रीश्री-गौर-नित्यानन्द एवं श्रीश्रीराधाविनोद-बिहारीजीके श्रीश्रीविग्रहगण प्रतिष्ठित किये हैं।

पिछलदा एक अत्यन्त प्राचीन स्थान है। श्रीमन्महाप्रभुजीके समयमें यह बंगाल और उड़ीसा की सीमापर बंगालप्रदेशमें एक प्रसिद्ध ग्राम था। श्रीमन्महाप्रभुजी जब पहली बार पुरीसे बंगाल होकर वृन्दावन जानेके लिये कनाई नाटशाला तक पधारे थे, उस समय वे उड़ीसा-प्रदेशकी सीमा पार कर इसी पिछलदा ग्राममें ठहरे थे और यहीं सेउड़ीसाकी सीमा पार करनेवाले मुसलमान महापात्र (सीमा पर तैनात राजकर्मचारी) को उड़ीसा लौटा दिये थे। यही नहीं, वे इस स्थान पर बहुत देर तक अपने भक्तजनोंके साथ भावावेशमें नृत्य और कीर्तन किये थे। तभीसे पिछलदा श्रीगौड़ीय भक्तोंका परम पावन तीर्थ स्थान बन गया है।

पिछले ५ आषाढ़को श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा—पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीआचार्यदेवके पौरोहित्य-में महासंकीर्त्तन, वेद-ध्वनि और होम आदि वैदिकी और पांचरात्रिकी विधियोंके बीच बड़े समारोहसे श्रीश्रीगौरनित्यानन्द और श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजी प्रतिष्ठित हुए हैं। इस समारोहमें श्रीश्रीआचार्य-देवके साथ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ासे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, श्रीहरि ब्रह्मचारी, श्रीगोविन्द ब्रह्मचारी, श्रीदयालहरि ब्रह्मचारी आदि, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपसे श्रीमुकुन्द ब्रह्मचारी, श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारी, श्रीललित प्रिय दासाधिकारी; श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ आसाम से श्रीसुदामसखा ब्रह्मचारी; श्रीसिद्धबाटी गौड़ीय मठसे श्रीरंगनाथ ब्रह्मचारी, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरासे श्रीपाद सनातन दासाधिकारी और श्रीसत्य-पाल ब्रह्मचारी तथा कल्याणपुर निवासी श्रीपाद-गजेन्द्रमोक्षन दासाधिकारी, भक्तिशास्त्री; पूर्वचक निवासी श्रीपाद भुवनमोहन दासाधिकारी, गोराचाँद दासाधिकारी, श्रीसंधिनीविलास ब्रह्मचारी आदि गये थे। इनके अतिरिक्त मेदिनीपुर जिलाके विभिन्न स्थानोंके गणमान्य वैष्णवजनोंने उक्त समारोह में सहयोग दिया था। इसमें लगभग सातहजार लोगोंको चतुर्विध महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको एक विराट सभाका आयोजन हुआ जिसमें श्रीलआचार्यदेवने नास्तिकता और जड़वादकी टूटी

हुई नौका पर चढ़ कर विनाशकी ओर द्रुतगतिसे अग्रसर होते हुए आधुनिक विश्वके लिये श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा-प्रणालीकी आवश्यकता पर बड़ा ही मर्मस्पर्शी और तत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। अगली संख्यामें उनके भाषणको प्रकाश करनेकी अभिलाषा है।

विभिन्न स्थानोंमें श्रीश्रीआचार्य द्वारा श्रीश्रीगौरवाणीका प्रचार

पिछलदा-महोत्सवके पश्चात् कल्याणपुर निवासी श्रीपाद गजेन्द्रमोक्षन भक्तिशास्त्री और श्रीमती कमला देवीके वासभवन और आस पासके कई एक ग्रामोंमें श्रीश्रीगौर-वाणीका प्रचार कर २८ जूनको श्रील आचार्य देव श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा पधारे हैं।

श्रीलभक्ति विनोद ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव और श्रीश्रीरथ-यात्रा

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें—

गत २१ आषाढ़को आधुनिक युगमें श्रीरूपानुग धाराके प्रधान संरक्षक आचार्य सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें १०८ श्रीश्रीआचार्यदेवके अनुगत्य में एक विराट सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद रसराज ब्रजवासी, श्रीपाद सुदाम सखा ब्रह्मचारी और श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रीठाकुरके अलौकिक चरित्र और शिक्षा के सम्बन्धमें भाषण दिये। सबके अंतमें श्रीआचार्य देवने उक्त विषय पर एक सारगर्भित और महत्वपूर्ण भाषण दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल नगर संकीर्त्तन और गुण्डिचा मंदिर-मार्जन हुआ। २३ आषाढ़को श्रीश्री जगन्नाथदेव एक रत्नमण्डित एवं विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुसज्जित रथ पर विराजमान होकर नगरके प्रमुख-प्रमुख मार्गोंसे भ्रमण करते हुए—लोगोंको अपने दिव्य दर्शनोंसे कृपा करते हुए श्रीगुण्डिचा-मंदिरमें पधारे।

२७ आषाढ़को 'हेरा-पंचमी' और ३१ आषढ़को पुनर्यात्राके महोत्सव भी खूब समारोहसे मनाये गये हैं। २३ आषाढ़से ३२ आषाढ़ तक प्रतिदिन श्रीश्री आचार्यदेव और त्रिदण्डि-संन्यासियोंके प्रवचन, कीर्त्तन और भाषण आदि हुए हैं। अन्तिम दिन सर्वसाधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विरह-उत्सव

जगद्गुरु श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर की तिरोभाव-तिथिके उपलक्ष्यमें यहाँ पर श्रील ठाकुर महाशयके रचित 'श्रीजैवधर्म' नामक ग्रन्थका पाठ हुआ तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजके सभापतित्वमें एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें स्वामीने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी अतिमर्त्य जीवनी और शिक्षाके सम्बन्धमें एक संक्षिप्त भाषण दिया। अन्तमें सर्व-सधारणको चतुर्विध महाप्रसाद वितरण किया गया।

—प्रकाशक